SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

आरोग्यदायिनी शक्ति के सोपान : प्राकृतिक चिकित्सा, योग और आयुर्वेद के परिप्रेक्ष्य में

तारकेश्वर नाथ पाण्डेय, शोधार्थी, योगा विभाग,
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखंड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
तारकेश्वर नाथ पाण्डेय, शोधार्थी, योगा विभाग,
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखंड, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 21/06/2022
Revised on : -----
Accepted on : 28/06/2022
Plagiarism : 00% on 21/06/2022

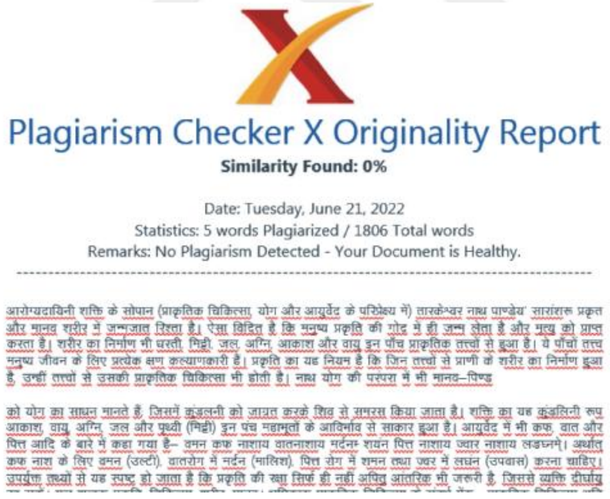

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 0%

Date: Tuesday, June 21, 2022
Statistics: 5 words Plagiarized / 1806 Total words
Remarks: No Plagiarism Detected - Your Document is Healthy.

आरोग्यदायिनी शक्ति के सोपान (प्राकृतिक चिकित्सा, योग और आयुर्वेद के परिप्रेक्ष्य में) तारकेश्वर नाथ पाण्डेय' सारांशरू प्रकृत और मानव शरीर में जन्मजात रिश्ता है। ऐसा विदित है कि मनुष्य प्रकृति की गोद में ही जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त करता है। शरीर का निर्माण भी धरती, मिट्टी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच प्राकृतिक तत्त्वों से हुआ है। ये पाँचों तत्त्व मनुष्य जीवन के लिए प्रत्येक क्षण कल्याणकारी हैं। प्रकृति का यह नियम है कि जिन तत्त्वों से प्राणी के शरीर का निर्माण हुआ है, उन्हीं तत्त्वों से उसकी प्राकृतिक चिकित्सा भी होती है। नाथ योग की परंपरा में भी मानव–पिण्ड

को योग का साधन मानते हैं, जिसमें कुंडलनी को जाग्रत करके शिव से समरस किया जाता है। शक्ति का यह कुंडलिनी रूप आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी (मिट्टी) इन पंच महाभूतों के आविर्भाव से साकार हुआ है। आयुर्वेद में भी कफ, वात और पित्त आदि के बारे में कहा गया है– वमन कफ नाशाय वातनाशाय मर्दनम् शयन पित्त नाशाय ज्वार नाशाय लङ्घनमे। अर्थात् कफ नाश के लिए वमन (उल्टी), वातरोग में मर्दन (मालिश), पित्त रोग में शमन तथा ज्वर में लघंन (उपवास) करना चाहिए। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति की रक्षा सिर्फ ही नहीं अपितु आंतरिक भी जरूरी है, जिससे व्यक्ति दीर्घायु

शोध सार

प्रकृति और मानव शरीर में जन्मजात रिश्ता है। ऐसा विदित है कि मनुष्य प्रकृति की गोद में ही जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त करता है। शरीर का निर्माण भी धरती, मिट्टी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच प्राकृतिक तत्त्वों से हुआ है। ये पाँचों तत्त्व मनुष्य जीवन के लिए प्रत्येक क्षण कल्याणकारी हैं। प्रकृति का यह नियम है कि जिन तत्त्वों से प्राणी के शरीर का निर्माण हुआ है, उन्हीं तत्त्वों से उसकी प्राकृतिक चिकित्सा भी होती है। नाथ योग की परंपरा में भी मानव–पिण्ड को योग का साधन मानते हैं; जिसमें कुंडलनी को जाग्रत करके शिव से समरस किया जाता है। शक्ति का यह कुंडलिनी रूप आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी (मिट्टी) इन पंच महाभूतों के आविर्भाव से साकार हुआ है। आयुर्वेद में भी कफ, वात और पित्त आदि के बारे में कहा गया है:

वमन कफ नाशाय वातनाशाय मर्दनम्
शयन पित्त नाशाय ज्वार नाशाय लङ्घनमे्।

अर्थात् कफ नाश के लिए वमन (उल्टी), वातरोग में मर्दन (मालिश), पित्त रोग में शमन तथा ज्वर में लघंन (उपवास) करना चाहिए। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति की रक्षा सिर्फ ही नहीं अपितु आंतरिक भी जरूरी है, जिससे व्यक्ति दीर्घायु रह सकें।

मुख्य शब्द

प्रकृति, चिकित्सा, शरीर, मानव.

भूमिका

प्राकृतिक चिकित्सा के संदर्भ में

प्राकृतिक चिकित्सा अति प्राचीन है; जितनी की स्वयं प्रकृति। पंचतत्त्व को इसका आधार माना गया है। पंचतत्त्व अर्थात् आकाश तत्त्व, वायु तत्त्व, अग्नि तत्त्व,

जल तत्त्व और पृथ्वी तत्त्व। विश्व में प्रचलित सभी प्रणालियों में सबसे पुरातन इस चिकित्सा प्रणाली को मानते हैं। वेदकाल के उपरांत पुराणकाल में भी इसका वर्णन देखने को मिलता है। उस काल में प्राकृतिक रूप से लोग स्वस्थ्य रहते थे। वर्तमान समय की भाँति असमय कोई भी निर्बल नहीं होता था। उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक तीनों शक्तियाँ मृत्युपर्यंत बलवती रहती थीं; क्योंकि वे लोग सच्चे अर्थों में प्रकृति के उपासक होते थे।

रोगों का उपचार हमारे चारों तरफ उपस्थित प्रकृति के तत्त्वों की मदद से सफलतापूर्वक किया जा सकता है। प्रकृति के असंतुलन के कारण ही हमारा स्वास्थ्य खराब होता है। व्यवस्थित प्रकृति चिकित्सा के प्रारंभ से ही हमारे जीवन की एक पद्धति बनी हुई है, जिसमें आराम, व्यायाम, स्वच्छता, व्रत, शुद्ध वायु, शुद्ध जल, परमित आहार, प्रकाश और मिट्टी के संतुलन के सही उपयोग पर बल देती है।

प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांत में यह सर्वोपरि है कि बीमारी के पनपने के लिए कीटाणु–रोगाणु से अधिक जिम्मेदार शरीर की उन परिस्थितियों का उत्पन्न होना है, जिसमें बीमारी पनपती है। फादर फुने के अनुसार– "शरीर अपने आपमें में स्वयं डॉक्टर है जो किसी भी बीमारी से निपट सकता है, उबर सकता है। हमें इस डॉक्टर की सिर्फ मदद करनी है।" डॉ० जूस्ट के अनुसार– "कोई भी बीमारी चाहे किसी भी अंग पर असर डालती हो या कहीं से शुरू होती हो, इसका प्रभाव संपूर्ण शरीर पर पड़ता है तो इलाज भी पूरे शरीर का होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी, जल, धूप एवं उपवास क उपयोग करना बताया गया है। जिसमें मिट्टी की चिकित्सा के द्वारा मिट्टी युक्त जमीन पर नंगें पैर चलना, मिट्टी के बिस्तर पर सोना, सर्वांग गीली मिट्टी का लेप, मिट्टी की पट्टी तैयार करना, जिसमें शरीर के सभी अंगों पर गीली मिट्टी की पट्टी रखकर विषाक्त–युक्त विकार को मिट्टी के द्वारा बाहर निकालना एवं जल चिकित्सा के द्वारा गरम–ठंडी सेंक, कटि स्नान, वाष्प स्नान, गरम पाद स्नान, सूखा घर्षण, ठंडा स्पंज स्नान, गीली चादर लपेट इत्यादि द्वारा की जा सकती है। धूप स्नान के अंतर्गत अवधि, ऋतु इत्यादि को देखते हुए रोगी की अवस्था, बल, देशकाल को ध्यान में रखते हुए यह चिकित्सा की जाती है। उपवास के दौरान एकाहार, फल उपवास, दुग्ध उपवास, मट्ठा उपवास, रसोपवास, अर्घ एवं सूर्य उपवास इत्यादि द्वारा चिकित्सा की जाती है। इसमें भी रोगी की अवस्था, बल, काल का ज्यादा ध्यान देना आवश्यक है। इसके उपरांत एनिमा, मालिश, टहलना, प्राणायाम (वायु चिकित्सा), कुंजल, आसन आदि के द्वारा भी चिकित्सा की जाती है; क्योंकि यह ऐसी प्रणाली है जिसमें माना गया है कि रोग के शरीर स्वयं ठीक करता है।

योग के संदर्भ में

योग को संपूर्ण जीवन–दर्शन माना गया है। इसका लक्ष्य सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य न होकर परमतत्त्व की अनुभूति, संपूर्ण व्यक्तित्व विकास, जीवन का संतुलन व शक्ति का निर्माण करना है। मनुष्य के अंदर सोई हुई शक्ति को जगाते हुए योग शक्ति के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करता है। जैसा की योग दृष्टि के अनुसार शरीर का विकार अंतर्दशन और ध्यान पर आधारित है वैसे ही शरीर शिव–शक्ति की अभिव्यक्ति का पवित्र माध्यम है। हमारे शरीर में नवचक्र, सोलह आधार, त्रिदोष और पंचव्योम भी स्थित है।

योग शब्द की उत्पत्ति 'युग' धातु से हुआ है, जिसका अर्थ है जोड़ना। इसे साध्य और साधन दोनों अर्थों में प्रयोग किया जाता है; किंतु इसका फल सार्वजनिक मिलता है, क्योंकि मनुष्य मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक–स्तर पर जाते हुए इससे जुड़ता जाता है और इसकी प्रक्रिया व्यापक होती जाती है, अर्थात्

1. मनुष्य अपने शारीरिक, ऐंद्रिक, मानसिक, आध्यात्मिक पक्षों से जुड़ना।
2. मनुष्य का अपने व्यक्तित्व का पर्यावरण के साथ जुड़ना।
3. मनुष्य की व्यक्तित्व–चेतना का दिव्य–चेतना के साथ जुड़ना।

सिद्धासिध्योंः सर्वाभूत्वा समत्वयोग–उच्यते। भगवतगिता 2/4

अर्थात् दुख–सुख, पाप–पुण्य, शत्रु–मित्र, शीत–उष्ण आदि द्वन्द्वों से निवृत्ति के साथ सभी से समभाव से

व्यवहार रखना ही योग है।

समग्र योग–दर्शन की बात करे तो पतंजलि का अष्टांग योग अपने आप में पूर्ण है। इसके अभ्यास से मनुष्य के मनोदैहिक व्यवस्था में सामजस्य स्थापित करके उसे तामस रोगों से बचाता है।

अष्टांग योग

यमः इंद्रियादि को वश में रखकर चित्त को शांति प्रदान करना।

नियमः मन के क्रिया–कलाप को द्वन्द्वों से दूर रखते हुए संतुष्टि धारण करना।

आसानः अपने स्वरूप में चेतना को स्थापित करना।

प्राणायामः शरीर में स्थित नाड़ियों में प्राण के प्रवाह को स्थिर रखना।

प्रत्याहारः इंद्रियों का विषयों से लौटना।

धारणाः संपूर्ण शरीर में एक ही तत्त्व व्याप्त होने की भावना।

ध्यानः समस्त प्राणियों में एकमात्र परमात्मा की प्राप्ति की भावना।

समाधिः साधक के अंतरूकरण की सभी तत्वों के प्रति एक समान अवस्था।

योगवशिष्ठ में जैसा की वर्णित किया गया हैः

धर्मार्थकम मोक्षाणां शरीरं साधनं यतः
सर्वकार्मेथ्यंतरंग शरीरस्य ही रक्षणम्।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, कर्म और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए निरोग तथा स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है; इसलिए शरीर की रक्षा अवश्य करनी चाहिए।

वेद में भी दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए अनेक जगह वर्णन किया गया है। वरदान देने वाली गायत्री माता हमें वायु, प्राण, अजा, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्म तेज प्रदान करने वाली ब्रह्म लोक में ले जाने वाली है। इसमें भी आयु का वर्णन कर यह बताया गया है कि आत्मा के बिना देह का कोई मूल्य नहीं है।

आयुर्वेद के संदर्भ में

योग और आयुर्वेद का मत है कि पंचतत्त्व मात्राओं से पंच महाभूतों की उत्पत्ति हुई जिसमें आकाश, आयु, अग्नि, जल, और पृथ्वी। मानव शरीर भी पंचमहाभूतों से निर्मित है। पाँच तत्वों और त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) के सम अवस्था में रहने से ही शरीर स्वस्थ रहता है। प्रकृति परमात्मा की माया कांति का ही एक रूप है। चलायमान होने के कारण वायु से तुलना करके वायु रूप कहा जाता है। चूँकि प्राण–शक्ति एक है; किंतु स्थान भेद और क्रिया भेद से प्राण के कई भेद बताए गए हैं। वायु देव रूप में शरीर में प्राण, अपान और व्यान आदि पंचव्यूह रूप विद्यमान हैं।

पितं पंगुरू कफः पंगुः पंगपो मलधावतः।
वायुना यत्र नियंते तत्र गच्छति मेधवत्।।

अर्थात् पित्त पगु (परतंत्र) है, कफ पंगु है, मल और धातु भी पंगु है– में वायु के अधीन है और बादल के समान मंत्र–तंत्र वायु को ले जाते हैं। चूँकि तीनों दोषों में वात बलवान होने के कारण रजोगुण युक्त, हल्का एवं गतिशील है और ये शरीर में पंचभेदावस्था (प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान) की स्थिति में रहकर कार्यों को संपन्न करते हैं। इन पाँचों के द्वारा ही शरीर रूप धारण होता है। ये रोग रहित होने से ही मनुष्य स्वस्थ एवं दीर्घायु रहता है।

पित्त द्रव सत्वगुण प्रधान कडुआ होता है और इसकी विकृति होने पर यह खटास उत्पन्न करता है। यह पाँच प्रकार का होता हैः साधक, पाचक, रंजक, भ्राजक, आलोचक। जो हृदय अग्नाशय, यकृत, त्वचा एवं पित्त को प्रभावित

करते हैं।

कफ स्निग्ध, शीतल, तमोगुणी तथा मीठा होता है। इसके दूषित होने पर यह नमकीन हो जाता है। यह पाँच प्रकार का होता हैः कलेदन, स्नेहन, रसन, अवलंबन, श्लेष्मक। यह आमाशय, सिर, कष्ठ, हृदय में रहते हुए संपूर्ण शरीर में स्थिर एवं सामर्थ्य प्रदान करता है।

अर्थात् यह कह सकते हैं कि जिस प्राणी के दोष (त्रिदोष) सम हो, अग्नि (पाचन शक्ति) सम हो तथा धातु (रसादि) सम हो, मल (मल–मूत्र) आदि तथा क्रिया (सोना–जागना) सम हो, आत्मा सभी इंद्रियों और मन प्रसन्न हों वह स्वस्थ कहा जाता है। स्वस्थ्य रहने पर ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

निष्कर्ष

आरोग्यदायिनी शक्ति उस प्रत्येक जीवित प्राणी के शरीर में विद्यमान है जबसे पृथ्वी का आरंभ हुआ। बदलती सभ्यता और विज्ञान के आगमन से शुरू में इसे परित्याग कर दिया गया; परंतु आज के भौतिकवादी युग में यह हमारी जरूरत बन गयी है और इस सत्य को इनकार नहीं किया जा सकता है। दर्शन प्रस्थान में सत्व, रज और तम त्रिगुण हैं तथा इसकी साम्यावस्था प्रकृति है। चिकित्सा प्रस्थान में वात, पित्त, कफ रूप त्रिधातु साम्यावस्था तथा तत्संभव स्वास्थ्य और इससे प्राप्ति सुख प्रकृति है। त्रिधातु की विषमावस्था एवं इससे उत्पन्न रोग और दुख विकृति है। जब इसके सामंजस्य की अवस्था होगी तब आकाश तेज सत्व प्रधान, वायु और जल रज प्रधान एवं पृथ्वी तम प्रधान होगी।

वायु के वेग से वात, तेज के वेग से पित्त और जल एवं पृथ्वी के वेग से कफ की सिद्धि संभव हैं। शरीर अपनी स्वच्छता, पुर्ननिर्माण और क्षति–पूर्ति जैसी प्रक्रियाओं द्वारा प्राकृतिक रूप से स्वास्थ्य प्राप्ति का निरंतर परमल करती रहती है। प्रकृति ने शरीर को सबसे बड़ी प्रयोगशाला के रूप में तैयार किया है। जिसमें रासायनिक क्रियाएँ इतने उच्च शिखर पर पहुँचती हैं कि हमारी दृष्टि वहाँ पहुँचने में असमर्थ हैं। अतः स्वास्थ्य लाभ के लिए मस्तिष्क तथा शरीर का एक होकर स्वयं अपने एवं प्राकृतिक शक्तियों के साथ सामजस्य होना आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. बाखरू हरिकृष्ण, *रोगों का प्राकृतिक उपचार,* प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं० 2013।
2. सक्सेना ओम प्रकाश, *बृहद प्राकृतिक चिकित्सा,* हिंदी सेवा सदन, पब्लिकेशन, मथुरा, सं० 2014।
3. यादव हरिनाम सिंह, *योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा द्वारा रोग निवारण,* जगदानंद चेतना प्रकाशन, वाराणसी, सं० 2010।
4. योगतत्वांक, *कल्याण* (65वाँ वर्ष), राधेश्याम खेमका (सं०), कल्याण, गोरखपुर।
5. शुक्ल एस०पी० शुक्ल, *आयुर्वेद दर्शन,* चौखंभा, ओरियंटालिया, वाराणसी, सं० 2006।
6. शर्मा शिव, श्रीमल वसंत कु०, *दोष धातुमल विज्ञान,* चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, सं० 1999।
7. शास्त्री वासुदेव, *चरकवाचनामृतम्,* ओरियंटालिया, वाराणसी, सं० 1987।
8. आयुर्वेद सार–संग्रह, श्री वैद्यनाथ, आयुर्वेद भवन लिमिटेड, नैनी, वाराणसी, सं० 2016।
9. पाण्डेय काशीनाथ, चतुर्वेदी गोरखनाथ, (सं०) शास्त्री राजेश्वर दत्त, उपाध्याय यदूनंदन, पाण्डेय गंगासहाय, चौखंभा, *चरकसंघिता,* भारती प्रकाशन, वाराणसी, सं० 2011।
10. सरस्वती स्वामी शिवानंद, *योग से रोग निवारण,* सस्ता साहित्य मण्डल, सं० 2013।
11. शास्त्री हरिकृष्ण, दातार, *योगः सिद्धांत एवं साधना,* चौखंभा, विद्या भवन, वाराणसी, सं० 2014।

12. तिवारी रामचंद्र तिवारी, *योग के विविध आयाम,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं० 1997।
13. शास्त्री स्वामी द्वारिकादास, *सिद्ध सिद्धांत पद्धति,* चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी, सं० 2014।
14. *योग दर्शन* (44वाँ सं०), गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2014।
15. आत्मनंद स्वामी अक्षय, *योग भगाए रोग,* प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं० 2012।

****